प्रयोजनवाद व उसका शैक्षिक दर्शन

डॉ. प्रवीन शर्मा
प्रिंसीपल शहीद भगत सिंह कॉलेज ऑफ एजुकेशन, कालांवाली, सिरसा

प्रयोजनवाद को आधुनिक युग की विचारधारा माना जाता है। प्रयोजनवाद वह दर्शन है जो पहले क्रिया या प्रयोग करता है तथा फिर इसके फल के अनुसार विचारों अथवा सिद्धान्तों का निर्माण करता है प्रयोजनवाद के अनुसार सत्य परिवर्तनशील है। परिवर्तन संसार का नियम है। जीवन में किसी सर्वमान्य तथा सर्वकालिक सत्य का निर्धारण नहीं किया जा सकता है। यह संसार अनेक तत्वों से मिलकर बना है तथा यह संसार सदा विकास की अवस्था में रहता है। आत्मा–परमात्मा नाम की कोई वस्तु नहीं है मन का ही दूसरा नाम आत्मा है। हमें जो कुछ भी दिखाई दे रहा है वह किसी न किसी क्रिया का परिणाम है। मानव अपने प्रयोग तथा अनुभवों के द्वारा सत्य व असत्य की खोज करता है। केवल वहीं सत्य है जिन्हें प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया जा सकात है। प्रयोगवाद का संबंध मानव तथा उसके जीवन से है। इसलिए इस मानवतावादी विचारधारा की संज्ञा दी गई है। प्रयोजनवाद आधुनिक विचार है परंतु इस प्रकार के विचार प्राचीन विचारकों के विचार में भी दिखाई पड़ते हैं। ईसा पूर्व चौथी व पांचवी शताब्दी में सोफिस्ट विचारकों ने कहा था कि मनुष्य सब बातों का मापदंड है और मनुष्य ही संपूर्ण सत्यों का निर्माण करता है। लॉक ने भी कहा है कि हमें वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करना उतना आवश्यक नहीं जितना उन वस्तुओं का जिनका हमारे जीवन से संबंध है।'

16वीं शताब्दी में फ्रॉन्सिस काम्टे के विचारों में प्राप्त होता है। कॉम्टे का विचार था कि 'शिक्षा सामाजिक परिर्वन के साथ चले जिससे वह बुद्धिपूर्ण तथा उपयोगी हो।' प्रयोजनवाद के कुछ तत्व हमें भारतीय दर्शन तथा बौद्ध दर्शन में भी प्राप्त होते हैं।

प्रयोजनवाद का अर्थः–

प्रयोजनवाद अंग्रेजी भाषा के Pragmatism शब्द का हिंदी रूपान्तर है। अंग्रेजी भाषा के Pragmatism शब्द की उत्पति ग्रीक भाषा के Pragma शब्द से हुई है जिसका अर्थ है 'किया गया, कार्य, व्यवसाय, प्रभावपूर्ण कार्य।'

कुछ विद्वानों का मत है कि Pragmatism शब्द की उत्पति ग्रीक भाषा के एक अन्य शब्द Pragmatism से हुई है। जिसका अर्थ है व्यवहारिक प्रयोग या क्रिया। शाब्दिक दृष्टि से प्रयोगवाद वह विचारधारा है जो केवल व्यवहारिक दृष्टि से वस्तुओं एवं सिद्धान्तों की सत्यता में विश्वास करती है। प्रयोजनवाद को कई नामों से पुकारा जाता है जैसे प्रयोगवाद, फलवाद या परिणामवाद, उपयोगितावाद तथा क्रियावाद। प्रयोगवाद इसे इसलिए कहा जाता है, क्योंकि प्रयोगवादी प्रत्येक सिद्धान्त विचार या कार्य की प्रयोग द्वारा सिद्ध करके देखता है कि क्या यह ठीक है या नहीं। इस विचारधारा में सत्य सदैव निर्माण की अवस्था में रहता है इसलिए इसे अर्थ क्रियावाद कहा जाता है। प्रयोजन और उपयोगिता पर बल देने से इसे प्रयोजनवाद कहा जाता है। चूंकि इसमें किसी कार्य का मूल्य उसके फल या परिणाम के आधार पर आंका जाता है, इसलिए इसे फलवाद कहा जाता है। व्यक्ति का व्यवहार अनुभव के द्वारा होने से इसे अनुभववाद या व्यवहारवाद कहा जाता है।

उपरोक्त आधार पर कह सकते हैं कि प्रयोजनवाद एक मानववादी दर्शन है जो उपयोगिता के सिद्धान्त को मानता है। इसका यह भी विश्वास है कि सत्य अटल नहीं है

यह सदैव परिवर्तनशील एवं निर्माणावस्था में रहता है। प्रयोगवाद केवल आदर्शमूलक नहीं है बल्कि यह व्यवहारिक है।

प्रयोगवाद की विशेषताएं :-

- कोई मूल्य शाश्वत नहीं होते हैं संसार परिवर्तनशील है। मूल्य भी बदलते रहते हैं। मानव स्वयं मूल्यों का निर्धारण करता है।
- यह सामाजिक बंधनों को नहीं मानता क्योंकि बंधन प्रगति के लिए हानिकारक एवं बाधक हैं।
- यह वाद उपयोगिता के सिद्धान्त में विश्वास करता है जो भी विचार या क्रिया मानव की अभिवृद्धि में सहायक है। वह उपयोगी है तथा जो उपयोगी है वह सत्य है। जो विचार सत्य या क्रिया उपयोगी नहीं है, वह असत्य है।
- सत्य परिवर्तनशील है। यह देशकाल तथा परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होता रहता है।
- यह विचारधारा विचारों की अपेक्षा क्रिया को अधिक महत्व देता है। पहले क्रिया होती है। फिर विचार पैदा होते हैं। विचार यदि क्रिया की कसौटी पर गलत निकलते हैं तो वे वास्तविक नहीं है।
- संसार अनेक तत्वों से मिलकर बना है यह बहुतत्ववादी है।
- शिक्षा का मुख्य लक्ष्य सामाजिक भावना पैदा करना है इसलिए प्रयोजनवादी शिक्षा है। सामाजिक दक्षता पर विशेष बल देते हैं।

- वह मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानते हुए उसकी शक्ति में विश्वास करता है। वह अपनी आवश्यकताओं, शक्ति में विश्वास करता है। वह अपनी आवश्यकताओं, उद्देश्यों तथा इच्छाओं के अनुसार अपने आपको पर्यावरण के अनुसार ढाल लेता है। अतः मानव के व्यक्तितत्व के विकास के लिए समाज अनिवार्य है।
- यह मानववादी है तथा प्रजातंत्र में विश्वास रखता है।
- प्रयोगों में विश्वास करता है । प्रयोजनवादियों के अनुसार कोई भी चीज अच्छी या बुरी नहीं होती प्रयोग करने के पश्चात ही पता चलता है कि वह अच्छी है या बुरी। सत्य को भी प्रयोगों द्वारा निर्धारित करना चाहिए।

शिक्षा में प्रयोगवादः–

प्रयोजनवाद में शिक्षा के क्षेत्र में परम्परागत तथा अनुदार दृष्टिकोण के विरुद्ध एक क्रान्ति उत्पन्न की और शिक्षा को एक नवीन दृष्टिकोण से देखा। शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोगवादी विचारधारा को प्रतिपादित करने का श्रेय विलियम जेम्स तथा दार्शनिक एवं शिक्षा शास्त्री जॉन डी.वी. को जाता है। उनके अनुसार वही शिक्षा उपयोगी है जो मानव के कल्याण के लिए हो। प्रयोजनवादियों का अटल विश्वास है कि समाज की आवश्यकताओं, बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप शिक्षा में परिवर्तन हो रहा है तो शिक्षा में ही परिवर्तन होना अति आवश्यक है। वही शिक्षा वास्तविक शिक्षा है जो प्रगतिशील समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके और बालक को वास्तविक जीवन के अनुभव प्रदान कर सके। व्यक्ति को केवल उन्हीं मूल्यों व आदर्शो व सत्य को स्वीकार करना चाहिए जिन्हें वह अपने प्रयोगों व अनुभव के आधार पर सत्य सिद्ध कर सके। गांधी जी का दृष्टिकोण

जीवन की प्रयोगशाला से शाश्वत सत्य की खोज निकलाने का दृष्टिकोण है । गांधी जी ने कहा है कि ‘‘मैने केवल अपने ढंग से मूल सत्य को अपने नित्य–प्रति जीवन की समस्याओं पर लागू करने की चेष्ठा की है ’’।

प्रयोजनवादी शिक्षा के पूर्व में प्रतिपादित उद्देश्यों नियमों आदि में विश्वास नहीं करते बल्कि परिस्थितियों तथा अनुभव के आधार पर उद्देश्यों के निर्माण पर बल देते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के लिए शिक्षा के अलग–अलग उद्देश्य होने चाहिए। प्रयोजनवादी बालक पर किसी प्रकार का दबाव डालना नहीं चाहते हैं। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य मानव में छुपी अनेक प्रतिभाओं को बाहर निकाल कर उसका सर्वांगीण विकास करना, मानव को वर्तमान पर्यावरण के साथ समायोजन के योग्य बनाना, सामाजिक संसार में पूर्ण जीवन व्यतीत करने के योग्य बनाना व बालक को ऐसी स्थिति में पहुंचाना है जिससे वह अपने मूल्यों का निर्माण कर सके।

प्रयोजनवादी परिवर्तनशीलता में विश्वास रखते हैं। इसलिए वे पाठ्यक्रम के भी परिवर्तनशीलता चाहते हैं वे निश्चित तथा पूर्व निर्धारित पाठ्यक्रम का विरोध करते हैं। जब सब कुछ परिवर्तनशील है तो पाठ्यक्रम भी आवश्यकताओं व परिस्थितियों के अनुसार बदलता है। प्रयोजनवादियों के अनुसार पाठ्यक्रम बनाते समय बहुत सी बातों का ध्यान रखना चाहिए। प्रथम तो पाठ्यक्रम सभी के लिए उपयोगी होना चाहिए उसमें वही विषय शामिल किए जाने चाहिए जो परिस्थितियों का सामना करने व समस्याओं को हल करने में सहायक हो। आज के युग के अनुसार तकनीकी व वैज्ञानिक शिक्षा आवश्यक है– इतिहास, भूगोल, गणित भाषा था स्वास्थ्य विज्ञान को पाठ्यक्रम में शामिल होना चाहिए।

द्वितीय पाठ्यक्रम में विभिन्न क्रियाओं को स्थान दिया जाना चाहिए जिससे इन क्रियाओं को करके बालक विभिन्न प्रकार के अनुभवों को प्राप्त कर सके। इसके द्वारा ही बालक में नये–नये विचारों का जन्म होता है। इन क्रियाओं द्वारा ही बालक में नैतिक, गुणों, नेतृत्व करने की शक्ति तथा स्वतंत्रता के दृष्टिकोण का विकास होता है।

तृतीय पाठ्यक्रम निर्माण करते समय बालक की प्राकृतिक प्रवृतियों और अभिरुचियों को पूर्ण ध्यान में रखना चाहिए। इन्हीं रुचियों के आधार पर ही प्रारंभिक कक्षाओं के पाठ्यक्रम में पढ़ने–लिखने, प्रकृति अध्ययन, चित्रकला तथा हस्तकला को स्थान देना चाहिए। गांधी जी के अनुसार शारीरिक, मानसिक शक्तियों का विकास करना शिक्षा का महत्वपूर्ण कार्य है ताकि विद्यार्थी आत्म निर्भर बनकर समाज का उपयोगी अंग बन सके । गांधी जी की शिक्षा का पाठ्यक्रम क्रिया प्रधान है । गांधी जी के अनुसार बालकों को बेसिक, क्राफ्ट तथा बालिकाओं को गृहविज्ञान की शिक्षा दी जानी चाहिए । पाठ्यक्रम की रचना करते समय इस बात भी ध्यान रखना चाहिए कि पाठ्यक्रम में लचीलापन होना चाहिए अर्थात् जीवन की आवश्यकताओं के अनुसार उसमें परिवर्तन होना चाहिए तथा इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि बालक के विभिन्न विषयों का ज्ञान पृथक–पृथक न देकर समस्य विषयों को परस्पर संबंधित करके पढ़ाया जाए। इस प्रकार प्रयोजनवादी इस प्रकार के पाठ्यक्रम के पक्ष में है। जो विद्यार्थी के सभी गुणों का विकास करके उन्हें मूल्य निर्माण, सामाजिक कुशलता की प्राप्ति, व्यक्तित्व विकास, उचित समायोजन तथा जीवन से संबंधित समस्याओं के समाधान के योग्य बना।

प्रयोजनवाद संसार की प्रत्येक वस्तु को परिवर्तनशील मानते हैं। इसलिए वे पूर्व निर्धारित सिद्धान्तों तथा अध्यापक प्रधान शिक्षण विधियों का विरोध करते हैं। उनके अनुसार

शिक्षण की कोई भी विधि इसलिए स्वीकार नहीं की जानी चाहिए, क्योंकि शिक्षा क्षेत्र में पहले से उसका प्रयोग किया जा रहा है। बल्कि उनका विचार है कि परिस्थितियों के अनुसार नवीन शिक्षण विधियों का सजृन किया जाना चाहिए। प्रयोजनवादियों के अनुसार शिक्षण विधि का निर्धारण करते समय शिक्षण प्रक्रिया को सोद्देश्य बनाने का लक्ष्य सामने रखना चाहिए तथा शिक्षण विधि के क्षेत्र में 'करके सीखना' तथा 'स्वानुभव से सीखना' आदि सिद्धांतों का समावेश किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त शिक्षण विधियां ऐसी होनी चाहिए जो संपूर्ण ज्ञान को एक इकाई के रूप में विकसित कर सके। गांधी जी के अनुसार सिखने की प्रक्रिया में समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए जिससे बालक के शरीर व मन का विकास हो सके । इसलिए बालक को जो भी विषय पढ़ाएं जाएं, शिक्षण विधियों द्वारा उनका एकीकरण और समन्वय किया जाना चाहिए जिससे बालक को ज्ञान और कौशल सीखें उनमें एकता स्थापित हो सके। प्रयोजनवादी यह भी मानते हैं कि शिक्षण विधि कोई भी हो उसमें क्रियाशीलता होनी चाहिए और बालक को दिए गए कार्य उसके वास्तविक जीवन से संबंधित होने चाहिए तभी वह उसमें रूचि लेगा।

प्रयोजनवादी का अनुशासन सामाजिक है तथा उसमें स्वतंत्रता को विशेष महत्व दिया गया है। विद्यालय की स्वतंत्रता सौद्देश्य और सामूहिक क्रियाओं के द्वारा सामाजिक अनुशासन तथा सामाजिक चेतना स्थापित किया जा सकता है। सामाजिक चेतना बालक को समाज विरोधी क्रियाओं में भाग लेने से रोकेगी तथा अनुशासनहीनता की समस्या नहीं आएगी सामाजिकृत क्रियाओं के परिणाम स्वरूप सहयोग सहानुभूति, आत्मविश्वास, स्वतंत्रता आदि स्थायी प्रवृतियां प्राप्त होती है। इस प्रकार स्वतंत्र सुखदायक व आनंद दायक, साभिप्राय तथा सामूहिक क्रियाओं से सामाजिक वातावरण की प्रतिष्ठा होती है। इन क्रियाओं

से बालक अनुशासन की शिक्षा ग्रहण करते हैं। इससे उन्हें नैतिकता तथा चरित्र निर्माण की शिक्षा प्राप्त होती है।

प्रयोजनवादी शिक्षा कें केंद्र में बालक को रखते हैं तो भी शिक्षक को भी महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हैं। अध्यापक बालक का एक मित्र, निर्देशक तथा परामर्शदाता होता है। शिक्षक के द्वारा ही शैक्षिक प्रक्रिया का उचित मार्ग दर्शन संभव है। बालक में सामाजिक आदतों, रूचियों और दृष्टिकोणों का विकास करना बालक में नये मूल्यों और आदर्श का सृजन करने की शक्ति पैदा करना, समस्याओं का समाधान कर सकने की क्षमता पैदा करना, छात्र में स्वयं चिंतन, कर्म करने, ज्ञान प्राप्त करने, भौतिकता को व्यक्त करने की क्षमता पैदा करना शिक्षक का ही कार्य है। इसलिए शिक्षक को ज्ञान का भंडार होना चाहिए, उसे केवल बुद्धिमान व कुशल ही नहीं बल्कि क्रियात्मक भी होना चाहिए। उसे काल मनोविज्ञान तथा दूसरे विषयों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। ताकि समाज की बदलती आवश्यकताओं के अनुसार वह बच्चों व समाज के विकास में योगदान दे सके।

प्रयोजनवादी मानवतावादी है वह सभी बातों की कसौटी मानव को ही मानते हैं। शिक्षा से संबंधित सभी बातों की कसौटी बालक है। बालक प्रारंभ से ही क्रियाशील होता है और उसमें परिस्थितियों के अनुसार मूल्यों का निर्माण करने का सामर्थ्य होता है। इसलिए उसकी स्वभाविक शिक्षण विधियों का निर्माण किया जाना चाहिए। प्रयोजनवादी मानते हैं कि शिक्षा बालक के लिए न कि बालक शिक्षा के लिए। स्कूल समाज का ही एक लघु रूप है। विद्यालय एक ऐसी संस्था है जहां पर बालक का सामाजिक अनुभवों को प्राप्त करने का अवसर प्राप्त होता है। जहां सोद्देश्य क्रियाओं में भाग लेकर स्वयं के अनुभव से ज्ञान प्राप्त करता है और सामाजिक जीवन की व्यवहारिक समस्याओं को

सुलझाता है इसलिए विद्यालय का वातावरण ऐसा हो जहां बालक परिवार के सदस्य के रूप में रहना सीखे और स्नेह, सहयोग, सहानुभूति, त्याग और बलिदान आदि गुणों से पूर्ण होकर सच्चे नागरिक बन सके।

इस प्रकार प्रयोजनवाद में बालक के केन्द्रीय स्थान दिया गया है तथा विचार की अपेक्षा क्रिया को अधिक महत्व देकर शिक्षा को अधिक रचनात्मक बनाया है। इसके द्वारा बालक की व्यवहारिक जीवन के लिए तैयार किया जाता है। बालकों में स्वतंत्रता समानता, सामाजिक निपुणता और अधिकारों तथा कर्तव्यों का पालन करने की क्षमता आदि गुणों को विकसित करने का प्रयत्न करता है, ज्ञान की एकता में विश्वास करने के कारण यह बालक को सभी प्रकार का ज्ञान देने का पक्षधर है तथा योजना विधि इसकी प्रमुख देन है। किसी निश्चित शिक्षा का उद्देश्य न होने व शाश्वत एवं सत्य की उपेक्षा करना, सिर्फ भौतिक उन्नति को ही महत्वपूर्ण मानते हुए आध्यात्मिक उन्नति को महत्व न देना व हर बात को स्वानुभव से प्राप्त करने की बात कहना आदि प्रयोजनवाद के कमजोर पक्ष है।

शिक्षा एक उद्देश्यपूर्ण विकासात्मक प्रक्रिया है, जो व्यक्ति के सुख तथा शांति का निश्चय करती है। व्यक्ति का तथा समाज का अपना-अपना जीवन दर्शन होता है। इन्हीं के आधार पर शिक्षा का उद्देश्य निश्चित होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि शिक्षा के लक्ष्यों का निर्धारण दर्शन से होता है।

यदि हम प्राचीन, मध्य तथा वर्तमान कालीन शिक्षा और समाज का अध्ययन करें तो स्पष्ट होगा कि तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था तत्कालीन दर्शन से प्रभावित रही है। यदि सिर्फ उद्देश्य की ही बातें कर तो प्राचीन कालीन शिक्षा के प्रकट मुख्य उद्देश्य थे- ईश्वरीय भावना, आत्मज्ञान, आत्मानुभूति, चरित्रनिर्माण, आध्यात्मिक उन्नयन आदि। वर्तमान कालीन

शिक्षा के उद्देश्य है :- भौतिक उन्नति, आत्मभिव्यक्ति, भौतिक सुख की प्राप्ति, शारीरिक उन्नति आदि ।

शिक्षा के पाठ्यक्रम और कुछ नहीं, बल्कि उद्देश्यों को प्राप्त करने के एक मार्ग है। यह उद्देश्य दर्शन से ही निश्चित होते हैं, अतः दर्शन, पाठ्यक्रम को प्रभावित करता है। आदर्शवाद अपने पाठ्यक्रम में मूल्यों, विचारों, पूर्व स्थापित आदर्शो के साथ सत्यं, शिवं, सुंदरम् की प्राप्ति को प्राथमिकता देता है। प्रकृतिवाद प्राकृतिक विषयों तथा अनुभव केंद्रित पक्ष पर बल देता है जबकि प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम में प्रगतिशीलता, उपयोगिता, परिस्थिति की आवश्यकता के अनुरूप विषयों को सम्मिलित किया जाता है। इसी प्रकार साम्यवादी दर्शन के अंतर्गत श्रम की महत्ता और श्रम करने की आदत को पाठ्यक्रम में सम्मिति करते हुए बच्चों में साम्यवाद की भावना कूट-कूट कर भरी जाती है।

शिक्षण विधियां वह साधन हैं जिनके माध्यम से दर्शन आधारित उद्देश्यों की प्राप्ति होती है। दर्शन शिक्षण विधियों को प्रभावशाली बनाता है। यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक और पाठ्यक्रम के बीच संबंध स्थापित होता है। इस प्रक्रिया के चयन में दर्शन बहुत मदद करता है।

आदर्शवादी व्यवस्था श्रवण, मनन, निदिध्यासन को प्रधानता देती है। प्रयोजनवाद क्रियात्मक एवं प्रयोगात्मक पक्ष पर ध्यान आकृष्ट करता है और यथार्थवाद निगमन सूत्र के आधार पर वास्तविक अनुभव पर बल देता है। हरबार्ट ने पंचपदीय व्यवस्था का निर्माण किया तो प्रकृतिवादियों ने स्वाभाविक अवलोकन पक्ष को प्रसारित किया।

अनुशासन शिक्षण व्यवस्था प्राण है, इसका आधार व्यक्ति का जीवन-दर्शन है। समाज के जीवन-दर्शन के आधार पर ही अनुशासन का स्वरूप निश्चित होता है। प्राचीन

व्यवस्था में दमनात्मक अनुशासन था । जिसके अंतर्गत मान्यता थी कि बालक को कठोरतापूर्वक दबाकर नियंत्रण में रखा जाए। ऐसा अनुशासन डंडे के बल पर स्थापित होता था और मध्य काल तक चलता रहा। ऐसे अनुशासन हेतु मान्यता थी कि यदि डंडे का प्रयोग नहीं किया तो बालक बिगड़ जाएगा।

आदर्शवादियों ने समय के साथ प्रभावात्तमक अनुशासन का सिद्धान्त दिया। उनकी दृष्टि में स्थायी अनुशान दंड और भय से नहीं वरन् अध्यापक के प्रभाव से प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रसंग में अध्यापक का प्रभावशाली व्यक्तित्व प्रभावक भूमिका निर्वाह करता है।

प्रकृतिवाद मुक्तात्मक अनुशासन पर ध्यान केंद्रित करते हुए बालकों को स्वतंत्रता प्रदान करता है। अनुशासन स्थापन में प्रकृतिवादी प्राकृतिक परिमणा–आधारित अनुशासन पर भी बल देते हैं। प्रयोजनवादी विचारधारा के अंतर्गत उपर्युक्त से परे सामाजिक अनुशासन स्वीकार किया गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अनुशासन व्यक्तिगत और सामाजिक विकास की पृष्ठभूमि तैयार करता है तथा इसका स्वरूप, देश और काल की दार्शनिक विचारधारा पर आधारित होता है।

समय एवं काल के दार्शनिक दृष्टिकोण पर शिक्षक और छात्र का मान–सम्मान निर्भर होता है। प्राचीन भारतीय समाज में शिक्षक को सर्वोच्च स्थान प्रदान करते हुए ब्रह्मा, विष्णु और महेश की संज्ञा दी गई। विद्यार्थी के लिए शिक्षक के व्यक्तितत्व का अनुकरण आवश्यक बताया गया। यहां अध्यापक की मुख्य भूमिका होती है, जबकि प्रकृतिवाद में माना जाता है कि अध्यापक का स्थान यदि कुछ है तो पर्दे के पीछे है। प्रयोजनवादी विचारधारा के अनुसार अध्यापक और छात्र उपयोगिता के आधार पर अपना स्थान बनाते हैं,

वे वर्तमान प्रयोजन में ही अपना मूल्य देखते हैं। गुरु और शिष्य के संबंधों में प्राचीन काल, मध्य काल एवं वर्तमान काल तक गिरावट ही आई है। दोनों के मध्य यह संबंध दार्शनिक दृष्टिकोण पर आधारित रहे हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि शिक्षा और दर्शन की घनिष्ठ पारस्परिकता है । यह दोनों ही एक दूसरे के पूरक है । शिक्षा और दर्शन दोनों ही समाज के विकास में सहायक होते हैं। दर्शन दिशा देता है तो शिक्षा उसका क्रियान्वयन करती है। दर्शन और शिक्षा का अन्योन्याश्रित संबंध होता है। दर्शन व्यक्ति में संचेतना जागृत करता है, इससे आंतरिक दृष्टि का विकास होता है। अनेक दार्शनिक ने इस संबंध के बारे में विस्तारपूर्वक विचार किया है। कतिपय विचारों को प्रस्तुत किया जा रहा है। व्यक्ति और समाज दोनों का अपना जीवन दर्शन होता है। इसी के आधार पर उसके रहन–सहन और विचारों का रूप प्राक्कटित होता है। जीवन दर्शन के अनुरूप ही क्रमशः शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, पाठन–विधि, अनुशासन आदि का निश्चय होता है। दर्शन शास्त्र के अनेक संप्रदाय है, यथा–विचारवाद भौतिकवाद, प्रकृतिवाद, प्रयोजनवाद, यथार्थवाद, अस्तित्ववाद, मानवतावाद, साम्यवाद, तार्किक साक्ष्यवाद आदि। इन दर्शनों के योगदान के अभाव में न तो शिक्षा का सुंदर पुष्प प्रकट होगा और न ही शिक्षक–प्रशिक्षकों को स्वस्थ विवेकपूर्ण दृष्टि से प्राप्त हो सकेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अनुराधा, नांरग एवं सुनीता (2007). उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा. लुधियाना : कल्याणी पब्लिशर्ज ।

2- Josef, C. Munkalel (1997) Gandhian Education. New Delhi : Discovery Publishing House.

3. कपूर, बीना एवं पाण्डेय, रामशक्ल (1998). शिक्षा के दार्शनिक आधार : आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर ।

4. गांधी, महात्मा (1950). सत्य के प्रयोग : अहमदाबाद, नवजीवन ।

5. पचौरी, गिरीश (1998). उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा ।

6. रूहेला, एस.पी.(2006). विकासोन्मुख भारतीय समाज में शिक्षा और शिक्षक : आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर ।

7. सिँह, एन.पी. (2003). शिक्षा के दार्शनिक आधार : मेरठ, आर.लाल बुक डिपो ।

8. सिँह, रघुबीर (2008). आधुनिक भारतीय आदर्शवादी दार्शनिकों का शिक्षा दर्शन में योगदान : अप्रकशित डाक्टरेट शोध प्रबन्ध, एम.जे.पी. रोहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली ।